ISSN No. 2349-4654
नाद - नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक वर्ष : 1, अंक : 2, दिसम्बर 2014

उत्तर प्रदेश का लोकसंगीत

निधि

शोधार्थी, संगीत विभाग, स्माइल पी.जी. गर्ल्स कॉलेज, मेरठ

सार-संक्षेप

लोकसंगीत किसी भी देश-प्रदेश अथवा विशिष्ट की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति का दर्पण होता है। मनुष्य ने जब अपनी दिनचर्या का कार्य करते समय कुछ गुनगुनाया, बजाया तथा खुशी को अंग संचालन द्वारा व्यक्त किया, तो विद्वानों ने इसे लोकसंगीत का नाम प्रदान किया। लोकसंगीत उस सुरसरिता के समान है, जिसका लक्ष्य लोक कल्याण है। लोकसंगीत का जन्म व्यक्ति के नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्सवों, त्यौहारों, रीति-रिवाजों एवं सामूहिक कार्यों द्वारा हुआ है। यह मानव की मन की अनुभूतियों की सरल, निर्दोष, उन्मुक्त स्वछन्द और सहज अभिव्यक्ति का परिचायक है। लोकसंगीत का विषय भी उतना ही व्यापक है, जितना लोकसंगीत का। अत: जीवन का कोई प्रसंग, भावना या प्रवृत्ति इससे अछूती नहीं है। प्रस्तुत शोध-पत्र में उत्तर प्रदेश के लोकसंगीत पर चर्चा की गई है। जिसमें विभिन्न समय अंतरालों में गाए जाने वाले विभिन्न गीतों की चर्चा की गई है।

शोध-पत्र

लोकसंगीत का अर्थ

लोकसंगीत 'लोक' तथा 'संगीत' दो शब्दो के संयोग से बना है, जिसका अर्थ है लोक के गीत या लोक अथवा लोगों में प्रचलित गीत। लोक शब्द वास्तव में नगर तथा ग्राम की समस्त साधारण जनता है, जो गेयात्मक होती है। स्वर व लय इसके प्राण तत्व है ऋग्वेद मे 'देहि लोकम्' इस रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। अर्थवेद मे भी 'लोक' शब्द का प्रयोग मिलता है। इस शब्द के कोशगत अनेक अर्थ है संसार, पृथ्वी, मानवजाति, समाज, प्रज्ञा, समूह आदि ।[1] भरतमुनि के नाट्यशास्त्र के अनुसार जो संगीत देश काल और जाति आदि के आधार पर स्वयं बनता है, फलता-फूलता है।

लोकसंगीत की परिभाषाएँ

लौकिक संगीत ही विकास क्रम को प्राप्त करके शास्त्रीय संगीत का रूप धारण कर लेता है। पं. जवाहर लाल नेहरू के अनुसार लोकसंगीत से उल्लास मिलता है और शिक्षा मिलती है कि जीवन का आनन्द केवल भौतिक पदार्थों की उपलब्धि में ही नहीं है। लोक संगीत भिन्न-भिन्न प्रान्तों का होते हुए भी सुनने वालों में मन को मोह कर अपनी ओर आकर्षित करता है।

महात्मा गाँधी के अनुसार लोकसंगीत को समस्त जगत गा सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार संस्कृति का सुखद सन्देश देने वाली कला है— लोकसंगीत मानव जीवन की उल्लास, उमंग कल्पना तथा समस्त सुख-दु:ख की कहानियों का चित्रण इनका प्रमुख विषय होता है। ग्राम गति प्रकृति के उद्‌गार है, इसमें अलंकार नहीं केवल रस है छन्द नहीं केवल लय है, लालित्य नहीं केवल माधुर्य है।[2]

उत्तर प्रदेश का लोक संगीत

बारहमासा, सोहर, बन्ना तथा सांझी आदि है विदेशिया उत्तर प्रदेश तथा बिहार के भोजपुरी भाषी प्रदेशों अथवा क्षेत्र का गीत है। यह ग्रामीण जनता में सर्वाधिक प्रचलित लोक गीत है। इस गीत के रचनाकार मुख्यरूप से 'बिहारी ठाकुर' माने जाते है। इसका उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ सामाजिक एवं पारिवारिक बुराईयों को खत्म करना है। उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा हिमाचल प्रदेश से, पश्चिमी सीमा हरियाणा से, दक्षिणी भाग मध्य प्रदेश से और पूर्वी भाग बिहार से जुड़ा हुआ है। इन चार प्रदेशों की संस्कृति की छटा सामने आती है। उत्तर प्रदेश के मुख्य रूप होरी, बारहमासा, कजरी, चैती, नौटंकी, रासलीला आदि प्रमुख रूप से प्रचलित है।[3] और इनका वर्णन क्रमश: इस प्रकार है—

होरी :

उत्तर भारत में 'होली' या 'होरी' नामक गीतों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है इन गीतों का संबन्ध होली पर्व से है जो बसन्त ऋतु के फाल्गुन मास में मनाया जाता है और इनका नामकरण भी इसी आधार पर हुआ है। होली उत्तर भारत की लोकधुनों से विकसित हुआ एक रसात्मक गीत है। यह ठुमरी शैली की ही विशेषताओं और उन्मुक्तता से परिपूर्ण है। ठुमरी ही की भाँति होलियाँ मुख्यत: ब्रजभाषा में ही पाई जाती है।

होली का श्रृंगारात्मक काव्य बसंत-ऋतु की मादकता से पूर्ण है। ऋतु प्रधान गायन शैली होने के कारण होली का वर्ण्य-विषय वसंत-ऋतु और होलिकोत्सव तक ही सीमित रहता है। उत्तर भारत का ब्रज प्रदेश होली गीतों के लिए प्रसिद्ध है। ब्रज की संगीतादि लोक कलाएँ मुख्यत: कृष्णलीला से अनुप्राणित रही है, अत: कृष्ण की होली क्रीड़ा ब्रज के

होली गीतों का प्रधान विषय है। ''होली के गीतों में कहीं राधा–कृष्ण होली खेलते दिखाई पड़ते है,[4] कहीं शिवजी होली का आनन्द ले रहे है, कही पवनसुत हनुमान लंका में होरी मचाते हुए पाए जाते है, तो कही राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भर कर एक दूसरे पर डाल रहे है—

''होरी खेले रघुवीरा अवध में होरी
राम के हाथ कनक पिचकारी
सीता के हाथ अबीर।''

बारहमासा...

उत्तर प्रदेश के लोकसंगीत की अगली विधा बारहमासा है जिसके अन्तर्गत एक वर्ष में आने वाली सभी ऋतुओं का मार्मिक वर्णन है।

बरसात के कोई घर से न निकले, तो तुम ही अनोखे विदेश न जैया।
मा तेरी बरजै बहन तेरी बरजै, तो हम बरजै मत जाओ संग लिया।

बरसात ....

आषाढ़ में राजा बरषा बहुत है, तो सावन गढे है हिंडोले संभलिया
भादों की पिया मेरे रेन अंधेरी रे कुवार मे बिया जिमावे सभंलिया
कार्तिक पिया मेरे रची है दिवाला, तो मगसिर मांग भरावै संभलिया
पूस मे मेरे राजा जाड़ा बहुत है, तो माद्य महाजल न्हादै संभलिया

बरसात ....

फागुन मे मिल होली जो खेले, तो चैत मे घट गुदावै सभंलिया
बैसाख मे पिया गरमी बढ़त है, तो जेठ में बरसै अंगार सभंलिया[5]

चैती :

चैती मूलत: उत्तर प्रदेश की एक लोकगीत शैली है, जिसे आजकल शास्त्रीय गायक शास्त्रीय ढ़ग से आकर्षक बनाकर गाते है। यही कारण है कि आजकल यह शैली उप–शास्त्रीय संगीत की सुन्दर विधा बन गई है। चैत मास मे गाए जानें वाले गीतों को ही चैती कहते है। भोजपुरी प्रदेश में उन्हे 'छांटो' भी कहा जाता है। चैती गीत अत्यधिक मधुर एवं सरस होती है, इन्हे दो प्रकारो में विभाजित किया जा सकता है—झल कुटिया तथा साधारण झल कुटिया। झल कुटिया शैली 'झाला' नामक एक विशेष प्रकार का वाद्यायंत्र बजाकर समूह के द्वारा गाई जाती है। सामूहिक रूप से चैती गाते समय गायक दो दलो मे विभक्त हो जाते है, पहला दल गीत की एक पंक्ति गाता है और दूसरा दल उसके पदों को जोर – जोर से गाता है। पहला दल की अपेक्षा दूसरे दल का स्वर अधिक तीव्र रहता है जब गान उच्चतम सीमा पर पहुँचता है, तो आवेश के कारण दोनों दलों का कण्ठ स्वर तीव्र हो जाता है।[6] झाला भी द्रुत गति से बजने लगता है। चैती के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति है—

विरहा, कजरी सब कोई गावे सब कोई गावे काग
चैता – चैती कोउ – कोउ गावे जेकर राग सुराग।

चैती गीतों के प्रेम की प्रधानता है। अधिकांश गीतो में संयोग श्रृंगार की उदीत भावनाओं का मधुर चित्रण रहता है। संयोग श्रृंगार की सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म वृतियों एवं भावों का प्रकाशन इन गीतों में होता है। उत्तर प्रदेश में वसंत के विपुल वैभव से उत्प्रेरित होकर लोक गायक अपने सुमधुर कण्ठ स्वर में हृदय का सम्पूर्ण प्रेम उड़ेलकर चैती के स्वर आलाप उठते है। प्रकृति की सम्पन्नता में प्रचलित होकर अपने समस्त अभावों को भूलकर गायक गीतों की लय में मस्त हो जाता है। भोजपुरी क्षेत्र मे 'बुलाकीदास के रचे हुए 'छाटो' बहुत प्रसिद्ध है। लोकगातों में रचयिता व्यक्तियों के नाम का उल्लेख नहीं रहता है, परन्तु भोजपुरी प्रदेश मे प्रचलित अनेक चैती गीतो मे 'बुलाकी दास' का नाम संलग्न है। शास्त्रीय गायक चैती का सारंग, पीलू, खमाज, काफी, देश, तिंलग आदि रागों में गाते हैं चैती गायन को ठुमरी शैली के गीतो का एक प्रकार माना जाता है। चैती अधिकतर दादरा कहरवा तथा रुपक आदि तालों मे गाई जाती है।[7] मध्य लय चैती के लिए अधिक उपयुक्त होती है गिरिजा देवी, शोभा गुर्टू तथा श्री विद्यवासिनी देवी आदि चैती गायन के प्रसिद्ध कलाकार हुए हैं।

कजरी :

हिन्दी भाषा के लोक गीतों के कजरी सबसे अधिक लोकप्रिय है। पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसका अत्यधिक प्रचार है। कहीं–कहीं इसको कजली भी कह दिया जाता है। भादों मास की कृष्ण पक्ष की तृतीया को एक त्योहार मनाया जाता है, जिसे कजली अथवा कजरी व्रत कहते है। यह स्त्रियों का त्योहार है। इस दिन स्त्रियाँ रात भर जागरण करती है। तथा सुन्दर श्रृंगार रस प्रधान गीतों को गाकर मनोरंजन करती हैं। बरसात के दिनों में गाँवों में सुन्दर तथा हंसीली कजरियाँ सुनने को मिलती है। युवतियाँ किसी बड़े पेड़ पर झूले डालती हैं और उस पर लम्बी पेंग मारते हुए कजली गाती है। कजली का मुख्य विषय राधा कृष्ण से सम्बधित संयोग तथा वियोग श्रृंगार रहता है। कजरी ऐसी लोकप्रिय गीत शैली है, जो सड़कों, चौराहों, बाग–बगीचों, मेलों तथा सामान्य गोष्ठियों से लेकर महफिलों तक में भी गाई जाती है। प्रचलित धुनों को लेकर अलंकार व मुर्की आदि के साथ शास्त्रीय पद्धति से गाने पर यह गायन उप–शास्त्रीय संगीत के वर्ग में रखा जाने लगा है।[8] इस शैली में शब्दों तथा शब्दों में निहित भावनाओं के प्रस्तुतिकरण को महत्व दिया जाता है। इसलिए यह सभी वर्ग के लोगों को प्रभावित करती है। कजरी गीतों में लोकतत्व की प्रधानता रहती है और राग नियमों में शिथिलता होती है। इनकी धुनों में प्राय: रागों की छाया दिखाई पड़ती है। कजरी अधिकतर मध्यलय में गाई जाती है।

कजरी के रचयिता तथा विशेष गायक 'गुरु' कहलाते हैं। इन रचयिताओं की विशेषता यह है कि शिक्षित न होते हुए भी ये सांगतिक शब्दों का प्रयोग बड़े ही उत्तम ढ़ग से करते हैं। छंद एवं ताल की परिभाषा न जानते हुए भी इनके छन्दों एवं तालों में तनिक भी त्रुटि नहीं होती। कजरी का मुख्य स्थान बनारस और मिर्ज़ापुर है। यहाँ सावन के महीने में कजरी

गाई जाती है। इसके अतिरिक्त लखनउ व कानपुर आदि के आस-पास के क्षेत्रों में भी कजरी बहुत लोकप्रिय तथा मधुर मानी जाती है। मिर्जापुर गाने में सावन में कजरी का दंगल होता है। इसमें सारी रात कजरी गाने वाली मण्डलियाँ भाग लेती है। सावन के महीने मे जब कजरी का दंगल होता है तो उसमें अनेक मण्डलियाँ भाग लेती है। कजरी अखाड़े के प्रसिद्ध गायकों के अतिरिक्त जिन कलाकारों ने कजरी गायन में ख्याति अर्जित की है, उनमें गिरिजा देवी का नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त-मुन्नी बाई, सिद्धेश्री देवी, बब्बा बाई, राधे रानी, बेगम अख्तर, पं. महादेव मिश्र तथा शोभा गुर्टू आदि ने कजरी को अपने गायन से समृद्ध किया है। पं. रामजी प्रसाद मिश्र ने कजरी गायन में नए प्रयोग किए है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोकगीतों के विकसित होने के कारण बनारस और मिर्जापुर है। दोनों कजरियों की अलग-अलग विशिष्ठता है, एक अलग रंग है मिर्जापुर की कजरी तो सर्वत्र विख्यात है।

''लीला रामनगर की भारी
कजरी मिर्जापुर सरनाम।''[9]

मिर्जापुरी कजरी की टेक प्राय: रामा, हे हरी तथा बनारसी कजरी की टेक साँवरिया या साँवर गोरिया आदि होती है। इन गीतों का संयोजन प्रमुखत: देस व खमाज रागों में होता है। लेकिन कालांतर में शास्त्रीय गायकों के द्वारा अपनाए जाने के पश्चात् कजरी गातों की रचना तिलक कामोद पीलू, तिलंग आदि रागों में भी की जाने लगी है।

नौटंकी :

नौटंकी को नाटक का बदला हुआ रूप माना जाता है। यह शुद्ध रूप में नृत्य-नाट्य ही है। इस प्रकार के नृत्य-नाट्यों में धार्मिक और ऐतिहासिक कथाओं का प्राधान्य रहता है। नौटंकी को स्वांग का ही बदला हुआ रूप कहा गया है।

नौटंकी का प्रमुख वाद्य नकारा होता है। नौटंकी की एक विशेषता यह है कि इसमें जटिल विषयों को भी हास्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। इसकी भाषा उर्दू तथा हिन्दी मिश्रित होती है। इसमें शेर, ग़ज़ल तथा बहरे आदि प्रयुक्त होते है। इसमें अधिकतर शृंगार रस तथा प्रेम कथाओं का वर्णन किया जाता है।

रासलीला :

उत्तर प्रदेश में स्त्री-पुरुष का सम्मिलित रूप से नृत्य करना बहुत लोकप्रिय है। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि ब्रज में रासलीला का प्रचार बहुत प्राचीनकाल से ही रहा है। इस नृत्य में मंच के ऊपर मध्य में राधा-कृष्ण का एक छोटा सा सिंहासन लगाकर आगे नृत्य के लिए खुला स्थान छोड़ दिया जाता है। रासलीला नृत्य के तीन भेद किए गए है। ताल रासक में लय के आश्रित ताली पर नृत्य किया जाता है। दण्ड रासक हाथ में डण्डे मे लेकर उन्हे बजाते हुए नृत्य किया जाता है। मण्डल रासक 'द्वै द्वै गोपी बिच - बिच माधव'' के स्वरूप मण्डलाकार नृत्य किया जाता है। श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन इस नृत्य की विशेषता है। रासलीला के साथ झांझ, करताल, मंजीरा, मदृंग, चंग, वेणु डफ तथा खंजरी आदि वाद्य यन्त्र बजाए जाते है। इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश का थाली-नृत्य, वसंत पंचमी के अवसर पर होने वाला झूमैलो - नृत्य तथा होली नृत्य आदि लोकप्रिय है।

पाद-टिप्पणियाँ

1. बृहद हिन्दी कोश, सम्पादक कालिका प्रसाद, पृ. 197
2. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत लोकसंगीत अंक कार्यालय हाथरस, पृ. 240
3. चतुर्वेदी सीताराम, भारतीय पाश्चात्य रंगमंच, हिन्दी समीति सूचना विभाग लखनऊ, पृष्ठ 719
4. शर्मा कृष्णचन्द्र, लोकजीवन के स्वर प्रकाशन कुरू लोक संस्थान संस्करण उपलब्ध नहीं।
5. मिश्र शुभनाथ बादल बरसे बिजुरी चमके : लोकसंगीत की सुहानी विधा, पृष्ठ 40
6. मिश्र चन्द्रशेखर 'चैता-चैती कोउ-कोउ गावै जेकर राग सुराग : छायानट, पृष्ठ 44
7. शन्ति जैन चैती, पृष्ठ 29 संस्करण उपलब्ध नहीं
8. उपाध्याय बलदेव, कजरी : संगीत अगस्त 1949, पृष्ठ 47
9. अर्जुन दास केसरी, कजरी : मिर्जापुर सरनाम छायानट, पृष्ठ 44

सन्दर्भ सूची

कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी सम्वत् 2030

गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत लोकसंगीत अंक कार्यालय हाथरस

पंडित चतुर्वेदी सीताराम, भारतीय पाश्चात्य रंगमंच, हिन्दी समीति सूचना विभाग, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1964

शर्मा, कृष्णचन्द्र, लोकजीवन के स्वर प्रकाशन कुरू लोक संस्थान संस्करण उपलब्ध नहीं।

मिश्र, शुभनाथ, बादल बरसे बिजुरी चमके : लोकसंगीत की सुहानी विधा, कजरी संगीत अगस्त 1969

मिश्र, चन्द्रशेखर, 'चैता-चैती कोउ-कोउ गावै जेकर राग सुराग : छायानट जुलाई सितम्बर 1947

शन्ति जैन, चैती 1980, पृष्ठ 29 संस्करण उपलब्ध नहीं

उपाध्याय, बलदेव, कजरी : संगीत अगस्त 1949

अर्जुन दास केसरी, कजरी : मिर्जापुर सरनाम छायानट, जुलाई-सितम्बर 1986

राम नरेश त्रिपाठी, कविता, ओभुदी, ग्रामगीत भाग-1